International Journal of Multidisciplinary Education and Research
www.multidisciplinaryjournals.in
ISSN: 2455-4588
Received: 24-02-2023, Accepted: 11-03-2023, Published: 26-03-2023
Volume 8, Issue 1, 2023, Page No. 94-96

विकास के आइने में आदिवासी

डॉ. अनीता यादव
सह–आचार्य (हिंदी), राजकीय महाविद्यालय बूंदी, राजस्थान, भारत

सारांश
वर्तमान में आदिवासी का विकास कहीं दूर दूर तक दिखाई नहीं दे रहा। वह विकास की दौड़ में सबसे पीछे खड़ा नजर आता है। आदिवासी का सही अर्थों में विकास करना है तो उनके क्षेत्रों में हो रहे विकास को रोजगार उन्मुख बनाने पर जोर दिया जाए जिसकी जमीन पर विकास हो रहा है। उसके सुरक्षा का दायित्व और उद्योगों में उसके सहभागिता सुनिश्चित हो। विस्थापितों की पुनर्वास परियोजनाओं को शुरू करने से पहले लोगों को अपने ही गृह राज्य में रोजगार देकर पलायन से रोकना होगा। उनके संसाधनों पर उन्हें अधिकार देना। अपना निर्णय खुद लेकर विकास के लिए अग्रसर हो। तभी वह अपने विकास के साथ–साथ देश को भी समृद्ध बना सकेंगे और खुशहाली का जीवन जी सकेंगे।

मूल शब्दः आदिवासी, विकास, आदिम जातियां, प्राकृतिक संसाधन

विकास की दौड़ में आज आदिवासी होने का पर्याय विस्थापन की नियति झेलने वाला समुदाय हो गया है। इसमें कोई संदेह नहीं। आज वैश्वीकरण और विकास के बवंडर से आदिवासी समाज के सामने कई आधारभूत मूल समस्याएं पैदा हो गई हैं। स्वतंत्रता के बाद विकास का जो मॉडल बनाया गया उसमें हाशिए पर जी रहे आदिवासी के लिए नहीं सोचा गया। औद्योगीकरण ने इस समस्या की और भी जटिल बना दिया। विकास की अंधी दौड़ में आदिवासियों के जीवन के आधार जल, जंगल और जमीन को छीना जा रहा है। उन्हें अपनी सामूहिक पहचान, संस्कृति, भाषा, जमीन से बेदखल किया जा रहा है। आदिवासी वह है जो आदिकाल से रह रहा है। जल, जंगल और जमीन जिसकी पहचान है। इनके बिना वह जीवन की कल्पना नहीं कर सकता। इसी भाव को अभिव्यक्त करती हुई कविता 'आदिवासी' की कुछ पंक्तियां इस प्रकार है –

'आदि काल से रहता है। हर देश में आदिवासी जो धकेला गया है जंगलों से हर आक्रांता द्वारा अपने स्थान से खदेड़ा गया है। बदला है हर धर्म वालों ने जो डर कर घुसता रहा। घने जंगलों में। पीता रहा। झरनों का पानी। खाता रहा पेड़ों से तोड़कर पत्ते। चुटकी भर नमक के बदले में देता रहा हरा भरा जंगल। हर काल में घटता रहा जंगल, जंगल के बिना कठिन है उसे पहचानना। आज पहचान के नाम पर मानना पड़ रहा है कि जिस के पूर्वज रहे हो कभी जंगल में वही है आदिवासी।'(1)

भूमंडलीकरण के इस दौर में मुनाफाखोरी उद्योगपतियों की लालची निगाहें आदिवासियों के जल, जंगल और जमीन के परंपरागत संसाधनों पर लगी है। जिस दौर में सरकारों का एकमात्र लक्ष्य विकास के नाम पर विशेष आर्थिक क्षेत्रों का निर्माण रह गया है। राष्ट्र के विकास के नाम पर सबसे ज्यादा दलित आदिवासी और पिछड़ी जाति जो कि आर्थिक दृष्टि से गरीब है। वही उजड़े हैं।

आदिवासी प्रारंभ से ही गरीबी, भुखमरी और कंगाली का जीवन जी रहा है। दो वक्त पेट भरकर रोटी भी नसीब नहीं होती। एक बार आधी मिल जाए तो अगले समय का कुछ पता नहीं। लीला मोदी की कविता की कुछ पंक्तियां 'लोकतंत्र' इसी भाव को अभिव्यक्त करती हैं 'हमारे अर्धनग्न अर्ध पूरित कड़वे दिन ठिठुरन भरी शिशिर की रातें पेड़ों पर करती बरसाते। हुजूर फिर भी लोकतंत्र की खुशहाली की गाथा गाते नहीं अघाते।(2)

आजादी की आधी सदी गुजर जाने के बाद किसी बड़ी कौम का आदिम जीवन जीना देश के विकास के लिए बड़ा धब्बा है। आदिवासी समुदाय को मुख्यधारा में जगह दिलाने के बजाय सरकार उन्हें ऐसे माहौल में धकेल रही है जहां हर स्तर पर उनका शोषण हो रहा है। ऐसी स्थिति में यह कहा जाए कि समूचे देश में विकास हो रहा है तो इतना ही कहा जा सकता है ऐसा आदिवासियों को बेदखल करने की कीमत पर संभव हो रहा है।

डॉ गिरिजा शंकर मोदी की कविता 'आदिम लोग' इसी भाव से ओतप्रोत दिखाई देती है

'हम देश की आदिम जातियां में। आजादी अब आड़े आ गई है। मेरे भाई। अभी–अभी बाढ़ बीती, सूखा आया फिर सारी ठंड। हमारी हड्डियों में समा गई। आजादी की यह साठवीं ठंड कितनी भयानक हो गई है। हमारे लिए। हम गलियारों और फुटपाथों पर फटे बोरों में लिपटे मुट्ठियॉ भीचें। बगल में दाने अथक प्रयास में है काट लेने को। एक और हमारी जानलेवा रात और हमारी अर्धनग्न बीवी और बच्चों। सुदूर ठंड से जम गए गांव में। जिन्हें रात भर ठंडी हवा चीरती रहती है। कौन सी शेष आस लिए जी रहे हैं ऐसे आजाद मुल्क में'।(3)

भारत के विस्थापितों में अधिकांश आदिवासी हैं। विकास और वैश्वीकरण का संपूर्ण दबाव आदिवासियों पर ही पड़ रहा है। विकास के नाम पर होने वाले समझौते आदिवासियों के खिलाफ है। कोई आदिवासी नहीं चाहता विकास न हो पर उनके खिलाफ नहीं होना चाहिए। बेदखली, विस्थापन, बेरोजगारी, दुख और अभाव में कोई नहीं रहना चाहता। विकास के नाम पर लोगों को उजाड़ा जा रहा है। किसानों और आदिवासियों के हितों में बने कानून लागू नहीं होते। वर्तमान विकास का मॉडल समानता और न्याय पर आधारित नहीं है। विगत वर्ष में हुए विकास की विसंगतियां सामने आ चुकी है। आज आदिवासियों का वर्तमान और भविष्य दोनों ही विकास की बलि चढ़ गए हैं। चंदा लाल चकवाला की कविता 'जाग आदिवासी' की कुछ पंक्तियां –

'वैश्वीकरण विकास का बवंडर। तुझे व तेरी कुटिया का छप्पर जाने कहां उड़ा ले जाएगा। जमीन तेरी छिनेंगी। सेज अमीरों की सजेगी। तेरे हाथ झुनझुना ही आएगा। अभी तू जो सोया रहा तो हाथ मलता ही रह जाएगा।'(4)

खनिज, वन और मानव शक्ति के रूप में जो आदिवासी क्षेत्र सबसे ज्यादा समृद्ध है वहीं क्षेत्र इन दिनों गरीबी और शोषण के द्वीप बनते जा रहे हैं। देश की गलत विकास नीतियों के कारण विकास तो शेष देश और शहरी लोगों का हो रहा है। उसके लिए अपने सब कुछ की कुर्बानी आदिवासी लोग दे रहे हैं जिनकी कहीं कोई आवाज नहीं, कोई सुनने वाला नहीं, फिर भी वह अपने को खुश रखने की कोशिश करता है। किसी से शिकवा शिकायत नहीं करता। राम शंकर चंचल की कविता 'वह' की कुछ पंक्तियां 'यही भाव बोध जगाती हैं' – वह भीख नहीं मांगता। नहीं लेता। मुफ्त में दान। वह सिर्फ मांगता है प्रकृति से पानी। बदले में देता है सोना लहलहाता खाने को मक्का की रोटी और बदन पर हाथ भर कपड़ा हो। उसे कोई गिला–शिकवा नहीं। वह रहता है। हर वक्त मस्त उन्मुक्त प्रसन्नचित्त। जैसे वह जानता हो। हमेशा प्रसन्नचित्त रहना ही सबसे बड़ी साधना है।'(5)

विकास का संतुलन सदैव उच्च वर्ग के पक्ष में रहा है। भारतीय संदर्भ में यह वर्ग आर्थिक और सामाजिक दोनों ही स्तरों पर वर्चस्ववादी रहा है। विस्थापन के खिलाफ पुर्नवासियों को लेकर चलाया गया कोई भी आंदोलन इतना भी नहीं कर पाया कि प्रभावित लोगों में एक वर्गीय राजनीतिक चेतना का विकास हो सके। विकास का सीधा संबंध राजनीति से होता है और आदिवासी का राजनीतिक आरक्षण होने के बावजूद दखल इतना नहीं की वे नीति निर्धारण पर ठोक बजाकर बात कर सकें। उनके विकास की नीतियां गैर आदिवासी नेतृत्व और नौकरशाही तय करती है अपना हित सुरक्षित रखकर। ऐसे में आदिवासी का विकास कहां है। गांधी जी ने कहा था कि देश को राजनीतिक आजादी केवल गरीबों की क्रांतिधर्मिता से मिलेगी। यह पढ़े लिखे लोग अंग्रेजी व्यवस्था के दलाल है। अफसोस प्रभावी कानूनी प्रणाली की कमी परियोजना के पीछे विकास के साथ–साथ व्यवसायिक निहित निस्वार्थ और विकास के नाम पर अनुचित हस्तक्षेप रहे। चंदालाल चकवाला की कविता 'जाग आदिवासी' से कुछ पंक्तियां –

'मिटायेंगे तेरे अवशेष। गिराएंगे तेरी झोपड़ी। महल खुद का बनवाएंगे। जंगलों का कर सत्यानाश। नारा विकास का लगाएंगे। सुन ए आदिवासी ऐसे तो तेरा नामोनिशान ही मिट जाएगा। सपना जल, जंगल और जमीन का चूर हो जाएगा। दिकूओं ने तुझे और तेरे हकों को खत्म करने की साजिश रच ली है।'(6)

तकनीकी विकास के कारण विकास के नाम पर यह हस्तक्षेप वर्तमान समय में और अधिक तेज हो गया। इसके पीछे वैश्विक पूंजी और इस पूंजीवाद पर सवार नव साम्राज्यवाद और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष विश्व बैंक आदि ऐसी एजेंसियां है जिन्होंने प्राकृतिक संसाधनों का दोहन तेज कर दिया। विकास के इस क्रम में आदिवासियों के हिस्से में कुछ न आकर गरीबी, कुपोषण, मृत्यु दर में वृद्धि, अशिक्षा, बेरोजगारी, ऋण एवं खेतिहर मजदूरी आई है। विकास की दौड़ में आदिवासी शामिल ही नहीं है या सबसे पीछे है। इसलिए आधुनिक विकास का कहर उन पर ही टूट रहा है। हरिचरण अहरबार की कविता समाज के हाशिए पर इसी भाव को व्यक्त करती है। 'समाज के स्याह हाशिए पर खड़े। खुद पिघल रहे हैं। पिछड़ेपन, अज्ञानता, निरक्षरता, उपेक्षा और अवसरवादिता की आग में।'(7)

आदिवासी जो जल–जंगल और जमीन से जुड़कर ही अपने जीवन की सार्थकता देखता है इन्हीं में रहकर वह खुश होता है और यही उनसे छीने जा रहे हैं। वह दरबदर भटकता फिर रहा है उद्देश्यहीन बनकर, 'खेतों के बीच गुजरी उसकी सारी उम्र। बारिश की बौछारों में भीगते हुए वह। खेत में पानी रोकता रहा। कोहरे की आंधियों में धोती का टुकड़ा। ओढ़े बैठा रहा खेत में। गर्मियों में फसल कटे खेतों में उड़ते। धूल के बवंडरों के बीच टहलता रहा। खेत की मेड पर के बबूलो में झांकता हुआ। वह जो खलिहान में लेटा रहा करता अन्न की रखवाली में। वही आज दाने दाने के लिए मोहताज हो रहा है।'(8)

आदिवासियों को यह समझ नहीं आया। लोकतंत्र में किसी समुदाय को सुविधा तभी मिलती है। जब वे संगठित होकर मजबूती के साथ अपनी मांग रखते हैं और न मिलने पर संघर्ष के लिए तैयार रहते हैं। ऐसी सोच उनमें तभी पनप सकती थी। जब वह शिक्षित हो। देश दुनिया में आ रहे बदलावों को देखने की दृष्टि रखते। अफसोस है, उन्हें नेतृत्व मिला तो ऐसा जो अपनी सीमाओं के पार न तो देख सकता था और न देखना चाहता था। वे आत्म संतुष्ट लोग रहे है अपने में मस्त। किसी तरह की महत्वकांक्षा से परे। परिणाम यह हुआ कि वे दीन दुनिया से कटते चले गए और पिछड़ गए। लोग आगे बढ़ते गए। विकास का लाभ उनकी झोली में दूर–दूर तक नहीं आया। उनकी स्थिति बद से बदतर होती चली गई और आज उन्हीं को उनकी जगह से खदेड़ा जा रहा है। जंगली और पिछड़ा कहा जा रहा है लेकिन उसे उसका भी बुरा नहीं लगता।

सी.एल. सांखला की कविता 'जंगली' की कुछ पंक्तियां इसी भाग बोध को व्यक्त करती हैं

'कैसे कहूं, उपवन वाटिका। जहां मैं रहता हूं। एक जंगल है। मेरा घर। जिसमें उगे हैं झाड़ झंखाड़। जिसके इर्द–गिर्द भरमार है। कांटो वाले। परबती बबूलो की जहां की धरती तुम्हारे महानगर की चमचमाती तारकोल वाली सड़क सी नहीं। जंगली कहकर दुत्कारते रहो, उन्हें मगर मैं गाली नहीं आशीष मानता हूं। जंगली कहाना। क्योंकि उपवन वाटिका नहीं एक जंगल ही तो मेरा घर है।(9)

सरकार का तर्क है आजादी को स्थाई रखना है तो विकास करना ही होगा और विकास के अधिकतर संसाधन आदिवासी क्षेत्रों में मिलेंगे। आदिवासी क्षेत्रों के भोले–भाले अनपढ़ अबोले आदिवासियों को समझा दिया गया कि देश का विकास होगा तो उनका भी विकास निश्चित है। विकास जब शहर से चलकर आदिवासी अंचल तक पहुंचेगा तो वहां के लोगों की अनदेखी थोड़े ही करेगा। सीधे साधे पवित्र मना आदिवासियों ने सरकार की इस बात पर विश्वास कर लिया और बिना किसी प्रकार रुकावट डाले विकास को अपने अंचलों में हाथ पैर फैलाने की अनुमति दे दी। फल स्वरूप आजादी के बाद हजारों बड़ी सिंचाई परियोजनो, खनिज और वन पर आधारित उद्योगों की स्थापना हुई। इनके अलावा लौह, अयस्क, तांबा आदि कई खनिज भंडारों के दोहन की परियोजना भी प्रारंभ हुई। ऊर्जा का एक स्रोत कोयला भी ज्यादा आदिवासी क्षेत्रों की कोयला खदानों से निकाला जा रहा है। तात्पर्य हुआ कि हमारे राष्ट्र के विकास रुपी शरीर की धमनियों में रक्त प्रवाह का बड़ा कार्य आदिवासी क्षेत्र कर रहे हैं या यूं कहें कि वास्तविक मालिक मूकदर्शक बनकर सब कुछ चुपचाप खिन्न मन से देख रहा है। परिस्थितियां चाहे कैसा भी हो। उसे संघर्ष करना है। जीवन के थपेड़ों को सहना है। सहना ही जैसे उसकी नियति बन गई है और किसी से कुछ ना कहना चुप रहना। रामशंकर चंचल की कविता 'आदिवासी' की कुछ पंक्तियां –

'मौसम। चाहे जैसा हो। वह इसी तरह रहता अर्धनग्न। कूल्हे पर लंगोटी। बदन पर हाथ भर कपड़ा। बचपन से आज तक। पसीना बहा। पगला। तमाम जिंदगी बिता दी इन्हीं के बीच। वह हमेशा गूंगा बना रहा। किसी से कभी शिकायत नहीं की पर कभी–कभी अपनी ऐसी स्थिति में ईश्वर को पुकार कर जरूर कहता है 'पीपल के नीचे खामोश बैठ पत्थर के भगवान के सामने जाकर वह जरूर चीखता चिल्लाता और कभी कभी रोने बैठ जाता। वहां भी वह अपने लिए नहीं मासूम बच्चों की भूख और खेती की प्यास के लिए। पता नहीं उसके पत्थर के भगवान उसकी सुनेंगे भी या सचमुच पत्थर ही बने रहेंगे।'(10)

आदिवासियों के साथ विकास के नाम पर छलावा हो रहा है। विकास की इस निर्मम प्रक्रिया नें स्थानीय आदिवासियों के विकास के सारे दरवाजे बंद कर दिए और उन्हें दर–दर भटकने और अभावग्रस्त जीवन जीने के लिए मजबूर किया है। आज देश के आदिवासी खुद को ठगा सा महसूस कर रहे हैं। विकास की खातिर अपना सब कुछ खोकर हर दृष्टि से कंगाल हो जाने वाले आदिवासी स्तब्ध और मूक हो गये है। विकास के सबसे निचले पायदान पर खड़े होकर भीख मांग रहे हैं। निर्मला पुतुल की कविता विस्थापन का दर्द –

'दो पाटों के बीच जनता पिस रही है और विकास के नाम पर जनता विस्थापन झेल रही है। कहीं महंगाई की मार से। जनता की कमर झुकी। तो कहीं सरकार झूठी उपलब्धियॉ गिनाकर अपनी पीठ थपथपा रही है। पड़ोसी राज्य में विकास का ग्राफ बढ़ रहा है। ऐसे में हमारा झारखंड विकास के सबसे निचले पायदान पर कटोरा लिए खड़ा है, विकास के नाम पर भीख मांग रहा है। जिस झारखंड में खनिज और प्राकृतिक संपदा से पूरा देश चमक रहा है उसी के मानचित्र पर धूल से मोटी परतें जम चुकी हैं। जिससे उसकी पहचान धूमिल होती जा रही है और हम अपनी पहचान अस्मिता लेकर चीख रहे हैं।'(11)

विस्थापन का मारा आदिवासी या तो शहरों में शरण लेता है या रिक्शा चलाता है या अन्य ऐसे काम करता है जो शहरियों की सुविधा के लिए होते हैं और जिन्हें वे स्वयं करना पसंद नहीं करते या फिर उन्हें ऐसी उजाड़ जगह पर रहने के लिए कहा जाता है जो सरकारी मेहरबानी से मिलती है और अपने जीवन यापन के लिए कोई भी वैध या अवैध धंधा अपनाने के लिए विवश होना पड़ता है। अधिक पैसा प्राप्त करने के लिए अपनी नैतिकता भी गिरवी रखना पड़ती है। वे चोरी, जुआ और अवैध शराब के धंधे अपनाकर अपनी आय में वृद्धि करना चाहते हैं। इस तरह जो आदिवासी कभी अपनी सच्चाई और ईमानदारी सादगी के लिए उदाहरण बनते थे। आज वे खूबियां उनसे अलग होती जा रही हैं। यह सारी स्थितियां निश्चित तौर पर आधुनिक विकास के उस क्रूर मॉडल को उजागर करता है जिसमें किसी भी कीमत पर पैसा कमाना व्यक्ति के जीवन का प्रमुख उद्देश्य बना दिया गया है।

बदली परिस्थितियों को आदिवासी धीरे–धीरे समझ रहा है देख रहा है सोच भी रहा है उसमें कुछ चेतना का स्फुरण भी हुआ है। वह विकास के मायने समझ रहा है। इसी संदर्भ में निर्मला पुतुल की कविता 'तुम्हारा एहसान लेने से पहले सोचना पड़ेगा हमें'। इसी भाव को व्यक्त करती है और ऐसे विकास को नकारती है।

'अगर हमारे विकास का मतलब। हमारी बस्तियों को उजाड़ कर। कल कारखाने बनाना है। तालाबों को भोथरा राजमार्ग। जंगलों का सफाया कर ऑफिस कालोनियां बसानी है और पुनर्वास के नाम पर हमें। हमारे ही शहर की सीमा से बाहर हाशिये पर धकेलना है तो तुम्हारे तथाकथित विकास की मुख्यधारा में। शामिल होने के लिए सौ बार सोचना पड़ेगा हमें। अपनी झोपड़ी के बदले तुम्हारा आवास लेने से पहले। नहीं चाहिए ऐसा विकास।'(12)

परिवर्तित परिवेश में आदिवासी विकास का मॉडल अपनाने को तैयार नहीं तो उसे विकास विरोधी कहा जाता है। असभ्य, जंगली और पिछड़े ही बने रहना चाहते हो तुम ऐसा कहा जाता है लेकिन कुछ भी हो आदिवासी विकास के इस प्रस्ताव को नकार रहा है। क्योंकि इस विकास से उसे कुछ भी हासिल नहीं हो रहा। आदिवासी कवियत्री निर्मला पुतुल की कविता की कुछ पंक्तियां –

'इस विकास के मॉडल के पीछे किसका उर्वर मस्तिष्क काम कर रहा है। छिपाओगे उन विकसित लोगों और देशों के विकास का राज। किस तरह तुम्हारे ही माध्यम से हमारे संसाधनों को छीन कर। विकास ऊंचे शिखर तक पहुंचे हैं। वे जानती हूं सब जानती हूं क्षमा करना। नकारती हूँ तुम्हारे विकास प्रस्ताव को जो पटना, रांची और दिल्ली से बना कर लाए हो तुम हमारे लिए।'(13)

निष्कर्श

आदिवासियों के उचित विकास के लिए प्रचलित विकास की अवधारणा पर पुनर्विचार करना होगा और ऐसी योजनाओं को तैयार करना होगा जिससे सबसे अंत में खड़े व्यक्ति को सबसे अधिक लाभ पहुंचे तभी सच्चे अर्थों में विकास की धारणा फलीभूत होगी। आदिवासी अपने विकास के साथ–साथ देश को भी समृद्ध बना सकेंगे और खुशहाली का जीवन जी सकेंगे।

संदर्भ–सूची

1. युद्धरत आम आदमी – अक्टूबर–दिसंबर 2008, पृष्ठ संख्या 54
2. अरावली उद्घोष – सितंबर 2008, पृष्ठ संख्या 13
3. अरावली उद्घोष – 2009, अंक 84 पृष्ठ संख्या 55
4. अरावली उद्घोष – सितंबर 2008, पृष्ठ संख्या 14
5. युद्धरत आम आदमी – अक्टूबर–दिसंबर 2008, पृष्ठ संख्या 52
6. अरावली उद्घोष – सितंबर 2008, पृष्ठ संख्या 14
7. अरावली उद्घोष – कविता अंक सितंबर 2008, पृष्ठ संख्या 39
8. अरावली उद्घोष – कविता अंक सितंबर 2008, पृष्ठ संख्या 16
9. अरावली उद्घोष – कविता अंक सितंबर 2008, पृष्ठ संख्या 08
10. अरावली उद्घोष – कविता अंक सितंबर 2008, पृष्ठ संख्या 15
11. अरावली उद्घोष – कविता अंक पृष्ठ संख्या 43
12. अरावली उद्घोष – सितंबर 2011, पृष्ठ संख्या 55
13. अरावली उद्घोष – सितंबर 2011, पृष्ठ संख्या 55